प्रवचन नं. २९७, गाथा-२१८, २१९, श्लोक-१५० बुधवार, भाद्र शुक्ल ७
दिनाङ्क २९-०८-१९७९

पर्यूषण का तीसरा दिन है न ? आर्जव धर्म, आर्जव। जो विचार हृदय में रहा हो, वही वचन में रहे, ऐसी सरलता हो। सम्यग्दर्शनसहित यह आजीव धर्म है। निश्चय से तो मुनि को होता है, परन्तु सम्यग्दृष्टि को भी यह गौणरूप से होता है। वह बाहर परिणमे। जैसा हृदय में हो, वैसा वचन में रहे, ऐसा ही बाहर शरीर द्वारा भी तत्प्रमाण कार्य किये जाएँ। आहाहा! इसका नाम आर्जव अर्थात् सरल (धर्म है), सम्यग्दर्शनसहित। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो व्यवहार की बात है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परमार्थ की बात है, व्यवहार की नहीं। यह भाषा है परन्तु अन्दर सम्यग्दर्शनसहित सरलता का निश्चय भाव ऐसा हो कि जैसा हृदय है, वैसी वाणी और वाणी है, वैसा वर्तन (होवे)। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो दसलक्षणी पर्व चारित्र के भेद हैं। मुनिपना है, उसे दसलक्षण धर्म होते हैं। सच्चे सन्त को अन्तर अनुभवसहित। कहते हैं कि वह सरलता तो उनका आर्जव स्वभाव और धर्म है। आहाहा! यह आर्जव धर्म है।

इससे विपरीत दूसरे को दगा देना, वह अधर्म है। ये दोनों क्रमश:... सरलतादि है, उसमें विकल्प की मुख्यता यहाँ ली है। है तो सरल अन्दर स्वभाव परन्तु उसे विकल्प ऐसा होता है कि उसका फल स्वर्ग—देवगति है और दगा का फल नरकगति है, नरकगति। यहाँ लोक में एक बार भी किया गया कपट... व्यवहार जन्म से... कपटव्यवहार, जन्म से लेकर भारी कष्टों से उपार्जित सब मुनि के सम आदि गुणों का अतिशय छाया विघात करता है। आहाहा! कपट है, उसके गुण की छाया भी नहीं रहती वहाँ तो। आहाहा! वक्रता, असरलता ऐसा करनेवाले को गुण की छाया भी; गुण तो रहते नहीं, उनकी छाया भी नहीं रहती।

उक्त मायाचार से क्षमादि गुणों की छाया भी बाकी नहीं रहती। मूल में से नष्ट हो जाती है। आहाहा! क्योंकि उस कपटपूर्ण व्यवहार में वास्तव में क्रोधादि सब दुर्गुण परिपूर्ण होकर रहते हैं। आहाहा! क्रोध, मान, माया, लोभादि कषाय जो संसार है... आहाहा! कष

(अर्थात्) कृश, संसार (अर्थात्) आय। जिसमें से परिभ्रमण का लाभ हो, ऐसी कषायें एक भी की हुई सब कषायें साथ में। क्रोधादि सब दुर्गुण परिपूर्ण होकर रहते हैं। आहाहा! खेद है कि वह कपट व्यवहार ऐसा पाप है कि जिसके कारण से यह जीव नरकादि दुर्गति ऐसे मार्ग में चिरकाल तक परिभ्रमण करता है। आहाहा! कपटादि तीव्र कषाय से तो वह निगोद में जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! निगोद, वह तिर्यंच है न? यह तिरछा जो कपट, महामायावी... आहाहा! जिसका हृदय हाथ न आवे, माया की—कपट की गहराई में पता न लगे उसका, ऐसा मायाचारी। आहाहा! मरकर निगोद में जाता है। जहाँ जीव है, उसकी स्वीकृति भी दूसरे को नहीं होती। आहाहा! उस जगह जाता है। इसलिए धर्मात्मा को सम्यग्दर्शनसहित सरलता के भाव को अपनाना चाहिए। आहाहा!

यहाँ तो एक विचार इस आकृति का आया है कि आकाश है, उसे भी आकृति है। आहाहा! अरे! देखो तो (सही)! व्यंजनपर्याय है न? आहाहा! यह अलोक है न, अलोक खाली? कहीं अन्त नहीं। तथापि उसे व्यंजनपर्याय—आकार है। आहाहा! यह पढ़ा था उस दिन, खबर है। उसमें अधिकार है, आकृति का, शुद्धद्रव्य का अधिकार। माणेकचन्द्र यह लेते थे, माणेकचन्द्र पण्डित थे न? यहाँ तो पहले से खबर है। आहाहा!

ऐसी जिसकी विशालता, ऐसी विशालता जिसे अन्तर में बैठी है, उसे माया और कपट कैसे हो? उसमें इसका वर्णन लिया 'जाणंतो सुद्धं अप्पाणं' ऐसा। यह शब्द रखा है। आता है न? ऐसा कि शुद्ध द्रव्य की आकृति और शुद्ध द्रव्य का वास्तविक स्वरूप, जिसे ज्ञान में, भान में जिसे बैठे... आहाहा! उसकी दशा सर्वज्ञ को प्राप्त करने की योग्यता हो जाती है। समझ में आया? आहाहा!

सिद्ध को आकार है। निराकार निरंजन कहने में आता है, वह तो जड़ का आकार नहीं है, (इसलिए कहा जाता है)। आहाहा! यहाँ क्या कहना है? वस्तु पूरी ऐसी है, उस वस्तु को जैसी है, उस प्रकार से ज्ञान में, श्रद्धा में जानना और मानना, उसमें कपट का और माया का अवकाश नहीं है। ऐसी सरलता में, धर्मी सरलता में परिणम रहे हैं। इसका फल उन्हें मोक्ष है। परन्तु थोड़ा विकल्प है, इसलिए उसका फल स्वर्ग कहा जाता है। आहाहा! दसलक्षणी पर्व अर्थात् तो अलौकिक चीज़ है, बापू! यह कहीं... आहाहा! भावलिंगी सन्त

जिसे—दसलक्षणी को आराधते हैं। आहाहा! यह अलौकिक बातें हैं। यहाँ कहाँ आया है? भावार्थ?

समयसार निर्जरा अधिकार, २१८-२१९ (गाथा) का भावार्थ। आहाहा! **जैसे कीचड़ में पड़े हुए सोने को जंग नहीं लगती और लोहे को लग जाती है, इसी प्रकार कर्मों के मध्य रहा हुआ ज्ञानी...** आहाहा! शुभाशुभ परिणाम के मध्य में रहा प्रभु, आहाहा! तथापि उसे कर्म नहीं बँधता। धर्मी **कर्मों से नहीं बँधता तथा अज्ञानी बँध जाता है।** इन शुभाशुभ परिणाम के मध्य में ही उसकी दृष्टि वहाँ है। धर्मी की दृष्टि शुभाशुभ परिणाम के कार्यकाल में भी, शुभाशुभ परिणाम के कार्यकाल में भी स्वभाव पर दृष्टि होने से उसे शुभाशुभ परिणाम हुए हैं और बन्ध है, ऐसा नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बातें। **यह ज्ञान-अज्ञान की महिमा है।** आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञान की तो सही परन्तु अज्ञान की भी?

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञान की भी महिमा है। राग को वह अपना मानता है, यह भी कोई अज्ञान की महिमा है। भगवान शुद्ध चिदानन्द प्रभु, आहाहा!

चिद्विलास में कहा है, तेरी शुद्धता तो बड़ी परन्तु तेरी अशुद्धता भी बड़ी। अनुभव प्रकाश में कहा है। आहाहा! तेरी अशुद्धता का पार नहीं पावे, ऐसी प्रभु तेरी अशुद्धता है। आहाहा! पर्याय में, हों! शुद्धता की तो बात क्या करना? आहाहा! 'शुद्धचेव लहे अप्पाणं शुद्ध जाणंतो' शुद्ध चैतन्यमूर्ति चैतन्य के प्रकाश का पूर, नूर—तेज, उसकी तो बात क्या करना! उसकी दृष्टि होने पर जो निर्मल परिणति प्रगट होती है, उसकी भी क्या बात करना! आहाहा! परन्तु कहते हैं कि, जिसे शुभाशुभ परिणाम हो, ऐसे सम्यग्दृष्टि को भी शुभाशुभ भाव पर दृष्टि नहीं होने से और त्रिकाली चैतन्य के प्रकाश के पूर को देखता होने से उसे बन्ध नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह १५० श्लोक है।

कलश - १५०

अब इस अर्थ का और आगामी कथन का सूचक कलशरूप काव्य कहते हैं:-

(शार्दूलविक्रीडित)

यादृक् तादृगिहास्ति तस्य वशतो यस्य स्वभावो हि यः
कर्तुं नैष कथञ्चनापि हि परैरन्यादृशः शक्यते।
अज्ञानं न कदाचनापि हि भवेज्ज्ञानं भवत्सन्ततं
ज्ञानिन् भुङ्क्ष्व परापराधजनितो नास्तीह बन्धस्तव।।१५०।।

श्लोकार्थ : [इह] इस लोक में [यस्य यादृक् यः हि स्वभावः तादृक् तस्य वशतः अस्ति] जिस वस्तु का जैसा स्वभाव होता है, उसका वैसा स्वभाव उस वस्तु के अपने वश से ही (अपने आधीन ही) होता है। [एषः] ऐसा वस्तु का स्वभाव, वह [परैः] परवस्तुओं के द्वारा [कथंचन अपि हि] किसी भी प्रकार से [अभ्यादृशः] अन्य जैसा [कर्तुं न शक्यते] नहीं किया जा सकता। [हि] इसलिए [सन्ततं ज्ञानं भवत्] जो निरन्तर ज्ञानरूप परिणमित होता है, वह [कदाचन अपि अज्ञानं न भवेत्] कभी भी अज्ञान नहीं होता; [ज्ञानिन्] इसलिए हे ज्ञानी! [भुंक्ष्व] तू (कर्मोदयजनित) उपभोग को भोग, [इह] इस जगत में [पर-अपराध-जनितः बन्धः तव नास्ति] पर के अपराध से उत्पन्न होनेवाला बन्ध तुझे नहीं है (अर्थात् पर के अपराध से तुझे बन्ध नहीं होता)।

भावार्थ : वस्तु का स्वभाव वस्तु के अपने आधीन ही है। इसलिए जो आत्मा स्वयं ज्ञानरूप परिणमित होता है, उसे परद्रव्य अज्ञानरूप कभी भी परिणमित नहीं करा सकता। ऐसा होने से यहाँ ज्ञानी से कहा है कि-तुझे पर के अपराध से बन्ध नहीं होता; इसलिए तू उपभोग को भोग। तू ऐसी शंका मत कर कि उपभोग के भोगने से मुझे बन्ध होगा। यदि ऐसी शंका करेगा तो 'परद्रव्य से आत्मा का बुरा होता है' ऐसी मान्यता का प्रसंग आ जायेगा।-इस प्रकार यहाँ परद्रव्य से अपना बुरा होना मानने की जीव की शंका मिटाई है; यह नहीं समझना चाहिए कि भोग भोगने की प्रेरणा करके स्वच्छन्द कर दिया है। स्वेच्छाचारी होना तो अज्ञानभाव है, यह आगे कहेंगे।।१५०।।

कलश - १५० पर प्रवचन

यादृक् तादृगिहास्ति तस्य वशतो यस्य स्वभावो हि य:
कर्तुं नैष कथञ्चनापि हि परैरन्यादृश: शक्यते।
अज्ञानं न कदाचनापि हि भवेज्ज्ञानं भवत्सन्ततं
ज्ञानिन् भुङ्क्ष्व परापराधजनितो नास्तीह बन्धस्तव।।१५०।।

इस लोक में जिस वस्तु का जैसा स्वभाव होता है, उसका वैसा स्वभाव उस वस्तु के अपने वश से ही (अपने आधीन ही) होता है। आहाहा! वस्तु भगवान आत्मा शुद्ध पवित्र है, वह स्वयं के आधीन है। अपवित्रता, वह पर के आधीन है, निमित्ताधीन है। आहाहा! शुद्ध स्वभाव जो भगवान परमानन्द प्रभु, वह शुद्ध स्वभाव तो स्वयं के आधीन—स्वाधीन है, वह पराधीन नहीं है। आहाहा!

वैसा स्वभाव उस वस्तु के अपने वश से ही... है। **ऐसा वस्तु का स्वभाव वह परवस्तुओं के द्वारा किसी भी प्रकार से अन्य जैसा नहीं किया जा सकता।** सिद्धान्त यह सिद्ध करना है। धर्मी को अपनी वस्तु का स्वभाव शुद्ध और पवित्र है, इसलिए वह पर की सामग्री में रहा और परसामग्री को भोगता है, ऐसा दिखता है तो भी परचीज़, परपदार्थ के अपराध से तुझे अपराध हो, ऐसा नहीं है। क्या कहते हैं? **परवस्तुओं के द्वारा किसी भी प्रकार से अन्य जैसा नहीं किया जा सकता।**

[सन्ततं ज्ञानं भवत्] जो निरन्तर ज्ञानरूप परिणमित होता है... धर्मी। शुद्ध स्वभाव चैतन्यमूर्ति प्रभु! और उसका परिणमन भी निरन्तर शुद्ध है। आहाहा! वह **कभी भी अज्ञान नहीं होता;...** वह किसी भी प्रकार परद्रव्य के कारण से अज्ञानी नहीं होता। आहाहा! जरा धीरे से (समझना), यह बात कठिन है। क्या कहते हैं?

हे ज्ञानी! तू (कर्मोदयजनित) उपभोग को भोग,... भोगने का नहीं कहते। यह शब्द है। उसे ऐसा कहते हैं कि प्रभु! तू शुद्ध चैतन्यघन है न! तुझे परद्रव्य की परिणति से तुझे कुछ नुकसान हो, ऐसी चीज़ है ही नहीं। आहाहा! जड़ का उपभोग और जड़ की परिणति से तुझे नुकसान हो, ऐसा कुछ है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। क्या कहा यह?

शरीर, वाणी, मन, पैसा, लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब की ओर का लक्ष्य और भोग, उसके कारण से यह नुकसान होता है, जड़ के कारण से—ऐसा नहीं है और तू तो ज्ञानानन्दस्वभावी वस्तु है तो तुझे परवस्तु के अपराध से तुझे नुकसान हो, ऐसा नहीं है। भोग, ऐसा कहा है। यह तो मुनि हैं। भोगने का अर्थ (यह कि) परद्रव्य से तुझे नुकसान नहीं है, यह निःशंक उसे सिद्ध करते हैं। आहाहा! इस शरीर की क्रिया या वाणी की क्रिया या बाहर के संयोग के कारण धर्मी को कोई अपराध हो, परद्रव्य के कारण, ऐसा है नहीं। और स्वद्रव्य का निरपराधी स्वभाव तो अनुभव में परिणमता है। आहाहा! क्या कहते हैं?

भगवान आत्मा चैतन्य के प्रकाश का पुंज प्रभु! उसका जिसे अन्तर में स्वभाव का स्वीकार और सत्कार हुआ है, ऐसे धर्मी को तो शुद्ध चैतन्य के स्वभाव का परिणमन होता है। वह परिणमन परद्रव्य द्वारा दूसरा किया जा सकता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! शरीर की क्रिया चाहे जितनी हो, ऐसा कहना है। परन्तु उससे निरपराधी भगवान आत्मा को अपराध नहीं होता। आहाहा! क्या कहते हैं?

हे ज्ञानी! तू (कर्मोदयजनित) उपभोग को भोग,... बाहर की सामग्री को तू भोग। अर्थात् तेरा लक्ष्य वहाँ जाए, इससे तुझे नुकसान है, पर के कारण से (नुकसान है)—ऐसा नहीं है। तेरा लक्ष्य वहाँ जाए और विकल्प उठे, वह तो तेरा दोष है। परन्तु उस परवस्तु के कारण से तुझे कुछ दोष होता है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! पैसे बहुत रखे, शरीर की विषयादि की जड़ की क्रिया बहुत हुई, उससे उस जड़ की क्रिया से तुझे नुकसान होता है, यह बात नहीं है। तेरे भाव में विपरीत भाव होवे तो तुझे नुकसान होता है। आहाहा! गजब बातें, भाई!

इस जगत में [पर-अपराध-जनितः बन्धः तव नास्ति] यह सिद्धान्त सिद्ध करना है। **पर के अपराध से उत्पन्न होनेवाला बन्ध तुझे नहीं है...** शरीर की क्रिया से, पैसे से, स्त्री की देह से, ऐसी क्रिया से तुझे कुछ नुकसान हो, (ऐसा नहीं है), वे तो परद्रव्य हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **पर के अपराध से उत्पन्न होनेवाला बन्ध तुझे नहीं है (अर्थात् पर के अपराध से तुझे बन्ध नहीं होता)।** यह सिद्ध करना है, हों! भोग, कहा है, वह कहीं भोगने का नहीं कहा। परद्रव्य के सम्बन्ध में परद्रव्य के कारण तुझे नुकसान है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

भावार्थ : वस्तु का स्वभाव वस्तु के अपने आधीन ही है। शुद्ध चैतन्यप्रभु की शुद्ध परिणति स्वयं के आधीन है। आहाहा! **इसलिए जो आत्मा स्वयं ज्ञानरूप परिणमित होता है...** अर्थात् कि शुद्ध स्वभावरूप परिणमता है, **उसे परद्रव्य अज्ञानरूप कभी भी परिणमित नहीं करा सकता।** आहाहा! ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान, वह ज्ञान और आनन्दरूप होता है, उसे परद्रव्य कभी अज्ञान नहीं करा सकता। शरीर की चाहे जितनी क्रिया और लक्ष्मी का ढेर हो तो उसके कारण से यहाँ अज्ञान हो, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : उसकी ममता के कारण से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अपने अपराध से है, सीधी बात है। परन्तु यह तो ज्ञानी को तो वह है नहीं, ऐसा यहाँ कहा। वह बात यहाँ है नहीं।

धर्मी को आत्मा शुद्ध स्वरूप है, ऐसा कहा न? उसे वह परिणमता है। इसलिए अशुद्धता वहाँ उसे परिणाम में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह 'निर्जरा अधिकार' है, इसलिए ज्ञानी के शरीरादि के भोग के काल में भी उसे अशुद्धता टलती जाती है और शुद्धता बढ़ जाती है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि पर के कारण यहाँ अशुद्धता हो, ऐसा नहीं है। सूक्ष्म बात है। ऐसा करके कोई स्वच्छन्दी हो जाए, उसकी यह बात नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो सिद्धान्त का निश्चय सत्य क्या है, वह सिद्ध करते हैं। भगवान आत्मा शुद्ध चिद्घन आनन्दकन्द प्रभु को निहारनेवाला—देखनेवाला, उसे तो ज्ञान और आनन्दादि के परिणमन होते हैं। उस परिणमन को परद्रव्य की क्रियाएँ उस परिणमन को बदल सके या अज्ञान कर सके, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

परद्रव्य अज्ञानरूप कभी भी परिणमित नहीं करा सकता। यह सिद्धान्त सिद्ध करना है। परद्रव्य की परिणति से और परद्रव्य के अन्दर के संयोग-वियोग से तुझे कुछ भी नुकसान उसके कारण नहीं है। आहाहा! समझ में आया? एक भाई थे न? पण्डित, क्या कहलाता है? जामनगरवाले। 'लालन'! लालन ने एक प्रश्न रखा था, भाई! कि हमारे बड़ा जॉर्ज और ऐड... क्या कहलाता है? ऐडवर्ड! उसके एक स्त्री और तुम कहो कि तीर्थंकर चक्रवर्ती को ९६ हजार स्त्रियाँ! राजा ऐडवर्ड को... क्या कहलाता है दूसरा? जॉर्ज! उसके

एक स्त्री हो, अभी है। और चक्रवर्ती समकिती तीर्थंकर के ९६ हजार। अरे! सुन तो सही, कहा। वह ९६ हजार परद्रव्य है, वह नुकसान का कारण कहाँ है? समझ में आया? तब तो जिसका शरीर मोटा-स्थूल हो, वह नुकसान का कारण और पतला शरीर नुकसान का कम कारण, ऐसा है? परद्रव्य के कारण नुकसान है? आहाहा! उसे अपना मानना, (वह नुकसान है)। धर्मी को तो यह मान्यता है नहीं। आहाहा! ऐसा कि ९६ हजार स्त्रियाँ और तुम उन्हें तीर्थंकर और समकिती कहो और हम एक ही रानी रखें। परन्तु अब तेरा अनार्य अज्ञानी उसे भान कब है? लालन था, लालन, पण्डित लालन। अमेरिका में बहुत जाता था, इसलिए ऐसा सब उसे (सूझता था)। फिर तो यहाँ रहते। भाई! मार्ग अलग है, बापू! जड़ के अधिक संयोग इसलिए ज्ञानी को बन्ध का कारण है, ऐसा नहीं है। और कम संयोग है, इसलिए उसे बन्ध कम है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

निश्चय से तो भगवान पूर्णानन्द के नाथ में निर्मल पर्याय की उत्पत्ति होना, वह संयोग है और पूर्व की पर्याय का व्यय होना, वह वियोग है। आहाहा! ऐसा तो संयोग और वियोग धर्मी को भी होता है। क्या कहा, समझ में आया? पंचास्तिकाय की १८वीं गाथा में (आता है) कि पर्याय होना, वस्तु जो नित्यानन्द प्रभु है, उसे जो पर्याय निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो, वह भी पर्याय का संयोग हुआ और पूर्व की पर्याय का नाश हुआ, वह वियोग हुआ। संयोग और वियोग उसकी पर्याय में है। आहाहा! बाहर के कारण से संयोग-वियोग है, वह वस्तु में नहीं है। आहाहा!

रात्रि में प्रश्न था, ऐसा कि संयोग में... ऐसा था न कुछ? संयोग अधिक हो तो उसके कारण आत्मा को कहाँ (नुकसान है)? संयोग के कारण कुछ (नुकसान नहीं होता)। परद्रव्य है न? संयोगी चीज़ परद्रव्य है। वह पर्याय जो संयोगी है, वह तो स्वद्रव्य की पर्याय है और यह शरीर, कर्म, लक्ष्मी, कुटुम्ब, स्त्री, राज आदि वे परद्रव्य हैं। उन परद्रव्य के कारण से आत्मा को बन्धन हो और अज्ञान हो, ऐसा नहीं है। स्वयं ही अज्ञान राग को एकताबुद्धि से करता था, वह अज्ञान मिटाया है। आहाहा! उस पर के कारण अज्ञान नहीं था। यह स्वयं उस राग को एकत्वबुद्धि (से) किया था, वह अज्ञान था। वह अज्ञान पर के कारण नहीं था तथा वह अज्ञान मिटाकर ज्ञान किया, इसीलिए उसको परद्रव्य कोई अज्ञान

कर सके, ऐसा नहीं है। अधिक रानियाँ और अधिक इन्द्र और इन्द्राणियाँ, उनकी परिणति को परद्रव्य नुकसान करे, (ऐसा नहीं है)। थोड़ा संयोग, उसे थोड़ा बन्धन और अधिक संयोग, उसे अधिक बन्धन—ऐसा नहीं है। अरे! समझ में आया?

यह तो तत्त्व का नियम है कि तत्त्व जो स्वयं से ज्ञात हुआ और अनुभव में आया, उसकी दशा में अब परद्रव्य अधिक या थोड़े, वह उसे अज्ञान नहीं करा सकते। समझ में आया? आहाहा! परद्रव्य को तो स्वद्रव्य स्पर्श ही नहीं करता न! फिर थोड़े हों या अधिक हो। समझ में आया?

ऐसा होने से यहाँ ज्ञानी से कहा है कि–तुझे पर के अपराध से बन्ध नहीं होता... यह सिद्धान्त है। भोगने का कहा, वह भोग—ऐसा कहीं धर्मात्मा कहेंगे? परन्तु उस परद्रव्य के कारण से तुझे अपराध नहीं होता, यह सिद्ध करने के लिये बात की है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **तुझे पर के अपराध से बन्ध नहीं होता...** पर के अपराध से अर्थात् शरीर की बहुत क्रिया हुई और पैसे बहुत हुए और स्त्रियाँ बहुत, इसलिए उनके कारण यहाँ बन्ध है, ऐसा नहीं। आहाहा!

तू उपभोग को भोग। इसका अर्थ कि, संयोग में तू आता भले हो, उस संयोग में तू नहीं आया। संयोग थोड़े या बहुत, उसमें तेरा लक्ष्य जाए तो विकल्प (हो), वह और अलग वस्तु, परन्तु उन्हें जानने में तेरा लक्ष्य जाए, संयोग थोड़े हों या अधिक, वह तो जानने का लक्ष्य, ज्ञान जाने। इसलिए अधिक संयोग में आया, इसलिए उसे अज्ञान कर डाले और उसके परिणमन को बदला डाले, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! समझ में आया? यह तो वीतराग के सिद्धान्त, भाई! आहाहा!

और जिसे ये संयोग छूट गये, लो न! नग्न मुनि हुआ; इसलिए संयोग छूट गये, इसलिए ज्ञान वहाँ शुद्ध है—ऐसा नहीं; और संयोग में चक्रवर्ती को ९६ करोड़ के ढ़ेर पड़े हैं, तो उनके कारण से उसे ज्ञान का अज्ञान हो, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! और जिसे नग्नपना (होकर) संयोग छूट गये, इसलिए उसे शुद्ध ज्ञान हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया? इस प्रकार संयोगरहित देखे, इसलिए लोगों को ऐसा लगता है कि आहाहा! यह त्यागी है। परन्तु अन्तर में राग की एकताबुद्धि पड़ी है, मिथ्यादृष्टि त्यागी नहीं है। आहाहा!

धर्मी का त्यागी है। ऐसी गजब बातें। बाहर के संयोग के अभाव से त्यागी के त्यागपने की महत्ता दिखायी दे, वह वस्तु खोटी है। और बाहर के संयोग की वृद्धि की पुष्टि में उसका अज्ञान है, मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है, ऐसा कल्पित करना, वह अत्यन्त झूठा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। यह कहते हैं न?

तुझे पर के अपराध से बन्ध नहीं होता... शरीर का संयोग बहुत अधिक परमाणु और स्त्रियाँ बहुत, लड़के बहुत, पैसे बहुत, मकान बहुत; इस कारण तुझे बन्ध नहीं होता। वह चीज़ तो पर है। आहाहा! **इसलिए तू उपभोग को भोग।** अर्थात् कि परद्रव्य के कारण से तुझे नुकसान नहीं है, इसलिए परद्रव्य के संयोग में भले हो, परन्तु तुझे उसमें (नुकसान नहीं है)। भोगने का अर्थ कि संयोग में हो, परन्तु तुझे बन्धन है नहीं। आहाहा! ऐसी उलट-पुलट की बातें हैं।

यहाँ तो वर्तमान में जैसे-जैसे कुछ बाहर का संयोग घटावे तो उसे त्यागी मानते हैं, तो बहुत संयोग बड़े ९६ करोड़ सैनिक और ९६ हजार स्त्रियाँ और करोड़ों अप्सराएँ समकिती हो हैं, परन्तु उस संयोग से उसका माप निकालना कि वह अपराधी है (तो ऐसा नहीं है)। और संयोग बहुत घट गये और कुछ नहीं रहा, वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं रहा; इसलिए वह धर्मी है, ऐसे संयोग के अभाव से उसका धर्म का माप नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! गजब बात है।

सत्य का पुकार है। सत्य है, वह भले चाहे जितने संयोग में दिखायी दे परन्तु सत् है, उसे हाथ अन्तर में अनुभवदृष्टि हुई है, उसका परिणमन ज्ञान और आनन्द का परिणमन है, उसे अधिक संयोगों से कुछ नुकसान होता है और संयोग थोड़े हों तो उसे कुछ लाभ होता है, ऐसा है नहीं। अरे! ऐसी बातें। आहाहा! भगवान सन्त स्वयं यह पुकार करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य। आहाहा! प्रभु! तू स्वद्रव्य है न! स्वद्रव्य की दृष्टि और स्वद्रव्य का परिणमन हुआ, इसलिए तुझे परद्रव्य के बहुत संयोग में तुझे लोग देखें और तुझे ऐसा हो जाए कि यह संयोग बहुत है, इसलिए मुझे नुकसान हुआ—ऐसा है नहीं। आहाहा! ज्ञानी तो मानता नहीं, परन्तु लोग ऐसा मानते हैं न? इतना अधिक परिग्रह और इतनी अधिक स्त्रियाँ और इतने सब लड़के। चक्रवर्ती को बत्तीस हजार लड़कियाँ, चौसठ हजार लड़के,

९६ करोड़ सैनिक, ९६ हजार स्त्रियाँ। परन्तु कहते हैं कि यह संयोग है, वह उसे बन्ध का कारण है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अर्थात् कि परद्रव्य, वह बन्ध का कारण नहीं है। आहाहा! यदि स्वद्रव्य में तूने पर को, राग को अपना माना हो, भले संयोग न हो, परन्तु राग को अपना माना हो तो वहाँ मिथ्यात्व का अपराध तूने खड़ा किया हुआ है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा कहकर सिद्धान्त का सत्यपना प्रसिद्ध करते हैं। उसे संयोग को भोग, ऐसा कहकर कहीं भोगने को कहा नहीं है। अपने राग को अनुभव करे और या निर्विकारी को अनुभव करे। इसके अतिरिक्त पर का तो अनुभव है नहीं परन्तु यहाँ कहने का आशय (यह है कि) बहुत संयोगों में तू आया, भले हो, वे संयोग कहीं नुकसान करनेवाले नहीं हैं। आहाहा! चिमनभाई! ऐसी बातें हैं। स्वतत्त्व जो आत्मा अन्दर पर से भिन्न है, उसे भले संयोगों के ढ़ेर हों, उससे उसके आत्मा को क्या है? आहाहा! और संयोग बहुत छूट गये हों, इसलिए वह धर्मी है, ऐसा माप कहाँ है? उसे असंयोगी ऐसी चीज़ भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ... आहाहा!

एक बार आकृति का कहा था न? यह सवेरे विचार आया था, अधिक। यह आकाश पूरा। अन्त नहीं तो भी आकार है। अरे.. अरे..! यह गजब बात है। जैनदर्शन का तत्त्व कोई अलौकिक है। सर्व व्यापक आकाश को भी प्रदेशगुण के कारण से आकार होता है। अरे! भाई! सिद्ध को भी आकार होता है। अपने असंख्य प्रदेश का आकार है, वह आकार होता है। उन्हें तो निरंजन निराकार (कहते हैं) वह तो पर की अपेक्षा से आकार नहीं है, ऐसा कहा है। और उन्हें तो ऐसा कहा है कि उसमें से कि उस प्रकार ऐसा आकार और निराकार जिस प्रकार से है, उसे समझे और उसका ध्यान करे तो उसे पर से भिन्नता का भान हो। आहाहा! उसमें है, वह पुस्तक पढ़ी थी। कहा नहीं? माणेकचन्दजी थे न? आहाहा!

इसी प्रकार शरीर का स्थूल आकार (हो) और शरीर का थोड़ा आकार तथा आत्मा के प्रदेश का आकार भी वहाँ थोड़ा है, इसलिए तुझे नुकसान है, ऐसा नहीं है। अथवा थोड़ा है, इसलिए लाभ है—ऐसा नहीं। आहाहा! केवली समुदघात करे, तब तो लोक के आकार

जितना आकार उनका हो जाता है। आहाहा! भगवान का प्रदेश का आकार लोकाकाश प्रमाण हो जाता है, तो वह आकाश बड़ा हुआ, इसलिए उन्हें नुकसान है और सात हाथ के ध्यान में थे, केवलज्ञान में, इसलिए उन्हें लाभ है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अपने छोटे-बड़े आकार से भी जहाँ लाभ-नुकसान नहीं, वहाँ परद्रव्य से नुकसान है, यह तो है ही नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बहुत जैनदर्शन, बापू! वीतरागमार्ग ऐसा है। आहाहा! कहीं है नहीं इसके अतिरिक्त। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे, ऐसा कहना वह व्यवहार है। उन्होंने अपनी पर्याय को देखा, उसमें दिख गया है। आहाहा!

पर से भिन्न है तो पर के चाहे जितने संयोग हो, वह तुझे नुकसान का कारण हो अथवा वे पर के बहुत संयोग तुझे अज्ञान करा दें, आहाहा! बहुत संयोग तुझे विपरीत बुद्धि करावे, (ऐसी उनमें) ताकत नहीं है, कहते हैं किसी की। आहाहा! समझ में आया? और बहुत संयोगों में आया, इसलिए बन्ध का कारण हुआ—ऐसा नहीं है। क्योंकि संयोग परद्रव्य है, इनसे तुझे नुकसान कुछ नहीं है।

इसलिए तू उपभोग को भोग। तू ऐसी शंका मत कर कि उपभोग के भोगने से मुझे बन्ध होगा। यह बात है। बहुत संयोग में आया, इसलिए मुझे बन्ध होगा—ऐसी शंका न कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या कहा? भाई! अधिक संयोग में शरीर में, ऐसे पैसे में, स्त्री के शरीर के संयोग में आया, आहाहा! इसलिए इसके कारण मुझे बन्ध होगा—ऐसी शंका न कर। आहाहा! क्या कहते हैं? भाई! आहाहा! तू पर के संयोग में आया, यह भले हो, उनसे तुझे बन्ध होगा—ऐसी शंका न कर, बस, यह बात है। समझ में आया? है इसमें? आहाहा! भोगने का अर्थ यह कि संयोग भले बहुत हो, ऐसा। परन्तु उनसे तुझे नुकसान नहीं है। आहाहा! यदि तेरी दृष्टि राग और पुण्य के परिणाम पर गयी, तब तो तुझे नुकसान तुझसे है, इस परद्रव्य से नहीं। हें? आहाहा! अब ऐसी बातें सुनने को मिलती नहीं, सूक्ष्म पड़ती है। क्या हो? भाई! आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ प्रभु... अनन्त गुणधाम। सुखधाम आता है न? श्रीमद् में (आता है)। 'स्वयं ज्योति सुखधाम' आहाहा! चैतन्य ज्योति और सुखधाम, आनन्द का स्थान,

आनन्द का खेत है, उसमें से आनन्द पकता है। आहाहा! ऐसे जीव को, जिसे आनन्द पका है, ऐसे आनन्दस्वभावी जीव को पर के छोटे-बड़े संयोग के कारण परिणाम में कुछ फेरफार हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया? उसे संयोग में से शंका उठा दी है कि इन अधिक संयोग में आया, इसलिए मुझे बन्ध होगा, ज्ञानी को यह भाव नहीं होता। आहाहा! अरे! जिसे वस्त्र का धागा भी नहीं रहा, संयोग छूट गया; इसलिए वह धर्मी है—ऐसा नहीं है। संयोग के घटने-बढ़ने से धर्म और अधर्म का माप है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

उपभोग के भोगने से... अर्थात् कि संयोग में आने से **ऐसी शंका मत कर कि मुझे बन्ध होगा।** आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह इसका मार्ग अलग, भाई! आहाहा! जैनमार्ग कोई अलग, भाई! यह वस्तु का स्वभाव वर्णन करते हैं, प्रभु! वीतरागदेव पूर्ण आत्मा का स्वभाव वर्णन करते हैं। प्रभु! तेरा स्वभाव तो शुद्ध है न! और उस स्वभाव का जिसे भान हुआ, उसे संयोग बहुत दिखते हैं; इसलिए इसे पाप हुआ या अपराध हुआ—ऐसा नहीं है। आहाहा! यह सिद्धान्त। यह स्वच्छन्दी होने के लिये नहीं है। उसे पर से दोष होता है, ऐसी शंका टालने की बात की है। आहाहा! ऐसा उपदेश।

यदि ऐसी शंका करेगा... कि परद्रव्य का बहुत संयोग, इसलिए मुझे कुछ नुकसान हुआ—ऐसी यदि शंका करेगा, आहाहा! चक्रवर्ती को तो एक-एक मिनिट की अरबों की आमदनी, बड़े नवनिधान, तथापि समकिती को उनके कारण कुछ भी शंका हो कि मुझे बन्ध होगा, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! इन्द्र को—सौधर्म को करोड़ों अप्सरायें परन्तु इन करोड़ो अप्सराओं की संख्या बहुत है, इसलिए मुझे नुकसान होगा, ऐसी शंका टाल दे। वह शंका धर्मी को नहीं होती। आहाहा! बाहर के संयोग के बहुत संयोग में दिखायी दिया, इसलिए वह कुछ अपराधी है, ऐसा तू माप न कर और संयोग घट गये, नग्न हुआ, इसलिए वहाँ धर्मी हुआ—ऐसा माप न कर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! नग्न मुनि हुआ, हजारों रानियाँ छोड़ी, राजपाट छोड़ा, अरे! प्रभु! ऐसा रहने दे। संयोग घटाये और घटे, वह तो उनके कारण से हुआ। इसलिए वहाँ धर्म है, ऐसा नहीं है। उसे स्वभाव शुद्ध चैतन्यघन पर (से) निर्लेप भगवान पर जिसकी दृष्टि नहीं है, उसे संयोग घटाने पर भी यह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसी बातें। हैं? बात बहुत (सरस है)।

स्वद्रव्य और परद्रव्य का विभाजन। आहाहा! तुझे परद्रव्य का चाहे जितना संयोग हो, कहते हैं। संयोग हो। भोगने का अर्थ यह, हों! समझ में आया? पूर्व के पुण्य के कारण कोई संयोग बहुत हो। संयोग हो, उपभोग भोग, ऐसा नहीं। संयोग हो, इससे तुझे नुकसान है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! ऐसा मार्ग समझना भी अभी (कठिन पड़ता है)। आहाहा! बाहर से माप किया। हें? कि उसने यह छोड़ा और उसने यह छोड़ा और इसने यह छोड़ा। परन्तु वास्तव में तो ग्रहण-त्याग वस्तु में है ही नहीं—पर का त्याग करना और पर का ग्रहण करना, वह वस्तु में है नहीं। इसके बदले पर का त्याग हुआ, वहाँ वह त्यागी हुआ, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! क्या कहा यह?

त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति। प्रभु आत्मा में ऐसा एक गुण है। अनादि सत् का सत्त्वपना, सत् का सत्त्वपना ऐसा है कि पर परमाणु या स्त्री आदि परपदार्थ को ग्रहण नहीं किया तथा उन्हें छोड़ता नहीं। ग्रहण और त्याग रहित ही उसका स्वरूप है। जो त्याग और ग्रहण रहित है, वह ऐसा कहे कि, मैंने इसे त्याग किया; इसलिए धर्म हुआ (तो ऐसा नहीं है)। आहाहा! यहाँ तो निश्चय में तो वहाँ तक ले गये हैं कि राग का त्यागकर्ता भी मैं नहीं हूँ। यह नाममात्र है। आहाहा! भगवान वीतरागस्वरूप स्वयं... आहाहा! ऐसी जिसे दृष्टि हुई, उसे राग का त्याग है, यह भी नाममात्र है। क्योंकि स्वयं रागरूप हुआ नहीं, वस्तु तो रागरूप है नहीं; इसलिए राग को त्याग किया, यह कहाँ से आया? कहते हैं। समयसार ३४ (गाथा में) है। पच्चक्खाण के अधिकार में है। धर्मात्मा ने राग का त्याग किया, यह भी कथनमात्र है। आहाहा! इसके बदले पर का त्याग किया, इसलिए धर्मी हो गया, (ऐसा कैसे होगा?) ऐसी बातें हैं। और पर के बहुत संयोगों में है, इसलिए वह अज्ञानी है, ऐसा माप रहने दे, प्रभु! ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी अटपटी बातें। यह श्लोक ऐसा कठोर लिया। स्वच्छन्दी हो जाए, उसके लिये यह नहीं है। मैं चाहे जितने परद्रव्यों को भोगूँ, मुझे क्या? परन्तु परद्रव्य को तो तू भोग सकता नहीं न! परद्रव्य को स्पर्श नहीं करता फिर प्रश्न कहाँ?

यहाँ तो संयोग अधिक हो, इसलिए कोई ऐसा माप करे कि इनके कारण नुकसान है, अथवा तुझे ऐसा हो जाए कि बहुत संयोग है, इसलिए मुझे कुछ नुकसान है, यह शंका

छोड़ दे। आहाहा! **यदि ऐसी शंका करेगा तो 'परद्रव्य से आत्मा का बुरा होता है'...** आहाहा! परद्रव्य के बहुत संयोगों से आत्मा को नुकसान है, **ऐसी मान्यता का प्रसंग आ जायेगा।** परद्रव्य से आत्मा को नुकसान होता है, बुरा होता है, ऐसा मानने का प्रसंग आता है। आहाहा! चक्रवर्ती को बत्तीस हजार तो पुत्रियाँ, बत्तीस हजार दामाद, चौसठ हजार पुत्र, चौसठ हजार पुत्रों की बहुएँ, छियानवें हजार स्त्रियाँ। आहाहा! उन संयोग से तू माप करने जाएगा कि उसे इतना अधिक संयोग है, इसलिए उससे कुछ नुकसान होता है! समकिती है, उससे उसे नुकसान है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! देखो! वीतराग मार्ग की ललकार तो देखो! स्वयं स्वद्रव्य को भूलकर अपराध करता है, वह तो स्वयं का कारण है। इस परद्रव्य ने इसे अपराध कराया है और परद्रव्य के संयोग बहुत हैं, इसलिए शंका हुई कि अरे रे! इतने सब संयोगों में मैं घुस गया हूँ, ऐसा छोड़ दे। सूक्ष्म बात है।

भगवान! तेरी महिमा का पार नहीं, प्रभु! आहाहा! अपने नहीं आया था? 'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा, प्रभु मेरे तुम सब भाव से पूरा।' आहाहा! 'पर की आस कहाँ करे प्रीतम, पर की आस कहाँ करे प्रियवर, किस बात से तू अधूरा?' नाथ! तू किस बात से अधूरा है, किस पर की आशा करता है? आहाहा! समझ में आया? 'प्रभु मेरे सब बातें—सब भाव से पूरा' ज्ञान से पूरा, आनन्द से पूरा, वीर्य से पूरा, शान्ति से पूरा, वीतरागता से पूरा, स्वच्छता से पूरा, प्रभुता से पूरा। आहाहा! इस प्रभुता का, असंग का जिसने संग किया, उसे बाहर के संग के अधिक संग से तुझे नुकसान है, यह रहने दे। आहाहा! समझ में आया? भगवान राग के संगरहित चीज़ है। ऐसे असंग का जिसे ज्ञान हुआ है, उसे राग आया और संयोग बहुत आये, इसलिए उसे नुकसान है—ऐसा नहीं है, कहते हैं। उस राग का वह जाननेवाला है। आहाहा! यहाँ तो दृष्टि और द्रव्य की विशेषता की बातें की हैं। ऐसी बात है, भाई!

वीतराग मार्ग का माप बहुत अलग प्रकार का है। आहाहा! माणु, माणु नहीं कहते यह? माणु अर्थात् माप है उसका नाम। माणु नहीं? दाने को मापे। नाणुं क्या कहलाता है? माप करते हैं, इसलिए माणु। कण्डे कितने भरे जाते हैं? इसी प्रकार भगवान आत्मा माप करता है। अपना और पर का माप करे, बाकी पर मेरे हैं, ऐसा अन्दर मानता नहीं। आहाहा!

प्रमाण कहा है न? प्रमाण कहो या माप करनेवाला कहो, सब एक है। प्र—विशेष माण। आहाहा! यह नाम पड़ा है तो माणु का अर्थ यह है कि, दस सेर का माप देते हैं। माणु होता है न लोहे का? इसी प्रकार भगवान ज्ञान की पर्याय माप देती है, अपना और पर का स्वरूप कैसा है, उसका माप देती है। आहाहा! पर मेरे हैं, यह बात उसके ज्ञानप्रमाण में नहीं है। तथा पर का बहुत संयोग हुआ, इसलिए प्रमाण, यह प्रमाण तो उसका ज्ञान करे, समझ में आया? परन्तु वे संयोग बहुत हुए, इसलिए उसे कुछ नुकसान है और जिसे संयोग बहुत छूट गये, इसलिए उसे धर्म का लाभ है, (ऐसा) रहने दे। आहाहा! ऐसी बातें हैं। हैं? आहाहा!

यदि ऐसी शंका करेगा तो 'परद्रव्य से आत्मा का बुरा होता है' ऐसी मान्यता का प्रसंग आ जायेगा। आहाहा! करोड़ों अप्सरायें हैं, इसलिए मुझे बन्ध का कारण है, ऐसा रहने दे, ऐसा है नहीं। आहाहा! और बिल्कुल हम बालब्रह्मचारी हैं, स्त्री का त्याग किया, पर का सब त्याग किया है, इसलिए मुझे धर्म हुआ—ऐसा रहने दे। समझ में आया? आहाहा! क्या शैली! गजब बात है! यह बात बैठना, बापू! वीतराग त्रिलोक के नाथ की। आहाहा! भगवान हीरा चैतन्य नाथ जिसे जगा और माना और अनुभव किया, कहते हैं कि उसे संयोग चाहे जितने हों, तू शंका नहीं करना कि उसके कारण मुझे नुकसान होगा। आहाहा! जरा आज का विषय सूक्ष्म है। गाथा ऐसी है न! आहाहा!

इस प्रकार यहाँ परद्रव्य से अपना बुरा होना मानने की जीव की शंका मिटाई है;... पर का संयोग कर और संयोग में तुझे बाधा नहीं, भोग,—ऐसा कहने का आशय नहीं है। समझ में आया? परद्रव्य को जीव का बुरा होना मानने की शंका मिटायी है। परद्रव्य अधिक है, इसलिए मुझे नुकसान होगा, यह बात रहने दे। यदि तेरी दृष्टि द्रव्य के ऊपर से हट गयी और राग को अपना माना तो तुझे नुकसान है। फिर भले संयोग बिल्कुल न हो और संयोगों के ढ़ेर हो। आहाहा! कहा था न? वह लालन ऐसा कहते थे कि हमारा बादशाह इतना बड़ा, हिन्दुस्तान का राजा (होवे तो भी उसे) एक स्त्री। और तुम कहते हो कि हमारे तीर्थंकर चक्रवर्ती को ९६ हजार स्त्रियाँ! यह क्या है? कहा, संख्या अधिक है इसलिए क्या?

मुमुक्षु : एक को माने तो भी मेरी मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु एक है, वह भी उसकी कहाँ है वह? एक और करोड़, उसकी कहाँ है? वह तो बाहर की संख्या है और बाहर की संख्या के आधार से आत्मा को नुकसान या अनुकसान है, ऐसा है? आहाहा! भले संयोग कुछ न हो परन्तु अन्तर में जिसने भगवान चिदानन्द को रागसहित और रागवाला माना, आहाहा! भले वह दिगम्बर मुनि हो तो भी वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! और छियानवें करोड़ सैनिकों के बीच भोग में पड़ा (हो), भरत चक्रवर्ती हमेशा सैकड़ों कन्याओं से विवाह करता, राजकन्या। छियानवें करोड़ अर्थात? भरतेश वैभव में आता है। भरतेश वैभव है न? है? भरतेश वैभव। पढ़ा है, उसमें यह आता है कि हमेशा सैकड़ों राजकन्या से विवाह करे। वह तो संयोग है। संयोग को वह स्पर्श कब करता है? दृष्टि में उनका त्याग है। दृष्टि में तो राग का त्याग है तो फिर परवस्तु का त्याग, वह तो प्रश्न कहाँ? वह तो पहले से ही परवस्तु का त्याग तो उसके स्वभाव में ही है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो **परद्रव्य से अपना बुरा होना मानने की जीव की शंका मिटाई है; यह नहीं समझना चाहिए कि भोग भोगने की प्रेरणा करके स्वच्छन्द कर दिया है।** आहाहा! **स्वेच्छाचारी होना तो अज्ञानभाव है...** आहाहा! स्वच्छन्दी होकर राग को और पर को अपना मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। **यह आगे कहेंगे।** आगे की गाथाओं में कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)